P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika
E: ISSN NO.: 2349-980X Vol-II * Issue-X*June-2015

मोहन राकेश कृत 'आधे–अधूरे' नाटक में पारिवारिक मूल्यों का विघटन

पिन्टू रावल
शोध छात्र,
हिन्दी विभाग,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,
रोहतक, हरियाणा

सारांश

मोहन राकेश का यह एक पारिवारिक नाटक है। जिसमें इन्होंने टूटते परिवार व मूल्यों में गिरावट की स्थिति को प्रमुख रूप से उभारा है। इस नाटक में पत्नी अपने पति को 'अधूरा पुरूष' मानती है तथा पूरेपन की तलाश में कई पुरूष मित्रों से सम्बन्ध बनाती है। अपना चरित्र खराब करती है। इस नाटक में दर्शाया गया है कि जब परिवार में माता–पिता का चरित्र व व्यवहार खराब हो जाता है तो उसका प्रभाव पूरे परिवार पर पड़ता है। विशेषकर बच्चों पर इसका बहुत बुरा असर पड़ता है। इससे बच्चों में चरित्र निर्माण, त्याग, सेवाभाव, विश्वास, प्रेम जैसे आदि गुणों का विकास नहीं हो पाता तथा पूरा परिवार अधूरेपन से पीड़ित रहता है। उनकों एक दूसरे के सुख–दुख से कोई सरोकार नहीं होता। जब परिवार का हर सदस्य अपना ही स्वार्थ देखता है तो संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है। जब परिवार के सदस्य अपने अधूरेपन को भरने के लिए गलत रास्तों का सहारा लेते हैं जो किसी भी दृष्टि से हितकारी नहीं होता। भौतिक सुख प्राप्त करने की चाह ही पारिवारिक विघटन को जन्म देती है। इस नाटक के पात्र टूटत परिवार और विघटित होते मानव–मूल्यों को प्रस्तुत करते हैं।

मुख्य शब्द : परिवार, मूल्य, विघटन, अधूरापन, तनाव, अतृप्त।

प्रस्तावना

'आधे–अधूरे' मोहन राकेश की तीसरी नाट्यकृति है। जिसका प्रकाशन 1969 ई0 में हुआ। 'आधे–अधूरे' में प्रमुख रूप से विघटन की प्रक्रिया का अंकन है। यह विघटन व्यक्ति, परिवार, समाज, देश, सर्वत्र व्याप्त है। परिवार के सदस्य एक साथ रहने भर से परिवार नही बनाते, वे एक दूसरें क सुख–दुख, आशा–आकांक्षाओं में सहभाग–सहयोग करते हुए एक परिवार बनाते हैं, किन्तु इस नाटक में जिस परिवार का चित्रण किया गया है, वे सभी जन बस एक साथ रह भर लेते है, किसी को दूसरे के सुख–दुख से कोई सरोकार नही है। सभी घर के भीतर होकर भी घर से बाहर है। पारिवारिक मूल्यों के विघटन की आज जैसी स्थिति है, वैसी पहले कभी नही थी। परिवार के प्रत्येक सदस्य भावनाओं से जुड़कर अपने उतरदायित्व को पूरा करते हुए, सुख–समृद्धि के लिए परस्पर स्नेह–सूत्र से बंधे रहते थे। किंतु आज इनकी व्याख्या ही बदल गयी है। इस नाटक के चरित्र आधुनिक युग के टूटते परिवार और विघटित होते हुए मानव मूल्यों को प्रस्तुत करते है। यह नाटक आज के शहरी क्षेत्र के मध्यमवर्गीय पारिवारिक जिन्दगी की विसंगति को उभारता है। नाटक का प्रत्येक पात्र अपनी अतृप्ति के कारण अभाव, कुण्ठा, आक्रोश और विषाद से अभिशप्त है। नाटक के पात्र अपने अधूरेपन में भी पूरेपन की तलाश के लिए बेचैन है। मोहन राकेश ने 'आधे–अधूरे' में स्त्री–पुरूष सम्बन्धों में आये आपसी तनाव, पारिवारिक विघटन और परिस्थितियों के दबाव से अन्दर ही अन्दर घुटते और खोखले होते समकालीन आदमी के यथार्थ को सच्चाई के साथ उजागर किया है।

मूल्यों का अर्थ एवं परिभाषा

'मूल्य' शब्द अंग्रेजी के वेल्यू (VALUE) शब्द का पर्याय है, परंतु इसका अर्थ वाणिज्य शास्त्र की टर्म कोस्ट (COST) से न होकर जीवन दृष्टि से हैं। मानव ने जीवन को सुखद बनाने के लिए ही मूल्यों का निर्धारण किया है। हमारे देश में विभिन्न दार्शनिक विचार धाराओं के कारण जीवन दृष्टि को विशेष महत्व प्रदान किया गया। परंतु बदलती परिस्थितियों ने न केवल मूल्यों का विघटन किया, बल्कि उनका परिवर्तन भी किया। फिर भी हम कह सकते है कि मानव के भौतिक, सामाजिक, तथा सांस्कृतिक भावों और विचारों की संगति का नाम ही मूल्य है। सच्चा मूल्य वही है जो मानव जीवन के विकास में सहायक हों।

एक परिभाषा के अनुसार– इस प्रकार जब हम संस्कृति राष्ट्र या समाज के संदर्भ मूल्यों का प्रयोग करते है तो हमारा लक्ष्य उन मापदण्डों, नियमों अथवा सिद्धांतो से होता है जिन्हे एक संस्कृति, राष्ट्र या समाज स्वीकार कर चुका है और उनका अनुपालन कर रहा है।

परिवारिक मूल्यों का विघटन

जिस प्रकार अनेक व्यक्तियों के सम्बन्धों की व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न मानव–समूहों का नाम समाज है उसी प्रकार परिवार भी ऐसे लोगों का समूह है जिन्हें वैवाहिक सम्बन्ध (पति–पत्नी) तथा रक्त सम्बन्ध (मां–बाप और बच्चे, भाई और बहन) एकताबद्ध करते है। व्यक्ति, इन्हीं सम्बन्धों के कारण एक परिवार के सदस्य बनकर रहने को बाध्य होते है।

'नाटककार स्पष्ट करता है कि जब व्यक्ति आवश्यकता से अधिक महत्वाकांक्षी हो जाता है तो वह स्वंय के अधूरेपन को भरने के लिए इधर–उधर भागता है लेकिन कहीं भी पूरापन नही पाता। इसी अधूरेपन के कारण वह स्वंय को और अपने से सम्बन्धित व्यक्तियों के जीवन को दुखःदायी बना देता है। सावित्री और महेन्द्रनाथ क सम्बन्धों की टूटन और घर का बिखराव बहुत कुछ इसी कारण हुआ। सावित्री को अधूरापन हमेशा खलता रहा। इस अधूरेपन को भरने के लिए उसने बाहर का सहारा लिया–कभी भी घर के अन्दर झांकने की कोशिश नही की। अपने परिवार के सदस्यों को हीन–भावना से देखना और बाहर पूरापन खोजना ही सारे घर मे त्रासदायक 'हवा' भर देता है।'[1]

महेन्द्रनाथ नाटक का नायक है लेकिन वह बेरोजगारी झेल रहा है। पहले महेन्द्रनाथ की ऐसी दयनीय स्थिति नही थी। उसने अपने मित्र जुनेजा के साथ मिलकर प्रेस खोला था और फैक्टरी में हिस्सेदारी की थी लकिन भाग्य साथ नही देता, व्यवसाय फेल हो जाता है। अपनी स्त्री की इच्छाओं की पूर्ति के लिए नए–नए सामान खरीदने के लिए, पार्टी करने में सारी प्जी चौपट कर दी। अब बेकारी की चपेट में पत्नी उसे तुच्छ समझती है। आज जीवन में असफल होकर स्त्री की कमाई की रोटिया तोड़ने वाला, कुठने वाला, गृहपति की मर्यादा से वंचित, पत्नी के प्रेमियों के आने पर चुपचाप घर से चला जाने वाला महेन्द्रनाथ की आज दयनीय स्थिति हो गई है। सावित्री हर समय यही सिद्ध करने में लगी रहती है कि हर दृष्टि से वह हीन, छोटा, और निकम्मा है। पत्नी द्वारा पति पर ऐसे व्यवहार किये जाने से पारिवारिक मूल्यों में गिरावट आती है।

नाटक मे महेन्द्रनाथ कहता है 'मैं इस घर में एक रबड़–स्टैंप भी नही, सिर्फ एक रबड़ का टुकड़ा हूँ बार–बार घिसा जाने वाला रबड़ का टुकड़ा। इसके बाद क्या कोई मुझे वजह बता सकता है, एक भी ऐसी वजह, कि क्यों मुझे रहना चाहिए इस घर में'[2]

सावित्री नाटक की प्रमुख पात्रा और नायिका है। वह महेन्द्रनाथ की पत्नी है, जो गृहस्थी की गाड़ी चलाने के लिए किसी ऑफिस में नौकरी करती है।

वह एसी नारी है जो तीन बच्चों की माँ तो बन चुकी है, किंतु अब भी उसकी लालसाए मिटी नही है। उसकी उम्र चालीस वर्ष है इस अवस्था तक पहुँचते–पहुँचते उसे शांत–गम्भीर एव जीवन से तृप्ति का अनुभव करना चाहिए था, किंतु वह ऐसा नहीं कर पाती। उसकी अतृप्त इच्छाएँ ही घर की कलह के मूल में है। सावित्री अतिभोगवादी प्रकृति की है। वह एक के बाद एक पुरूष मित्र बनाती है एवं घर पर बुलाती रहती है। यह उसकी अतृप्त इच्छाओं के सूचक है। सावित्री अपने बॉस सिंघानियां को उसके पद से चकाचौंध होकर ही बुलाती है। वह यह चाहती है कि अशोक को वह कहीं न कहीं नौकरी दिलवा दें। अशोक को यह बात पंसद नही कि उसके घर बड़े लोग आए वह कहता है कि

'जिनके आने से हम जितने छोटे हैं, उससे और छोटे हो जाते है अपनी नजर में।'[3]

नारी घर की केन्द्र–बिन्दु होती है। उसी के आचार–विचार पर परिवार का सुख–कल्याण निर्भर करता है। जब वही नारी बिगड़ जाय, कुपथगामिनी हो जाए तो घर का सुख–सतोष तो नष्ट होगा ही बच्चों पर भी बुरा असर पड़ता है। सावित्री के चरित्र के कारण ही तीनों बच्चे बर्बाद हो गए है।

वह सोचती है कि खास लोगों से संबन्ध बढ़ाने से शायद घर का कुछ भला हो जाए। आर्थिक रूप से उसे भी कुछ सहयोग मिले। किंतु ऐसा नही हो पाता है। उसकी अतृप्त कामेच्छाओं के कारण ही परिवार के हर एक सदस्य एक दूसरे से कट गए है।

वह जिस पुरूष के साथ जुड़ती है एक ही साथ सब कुछ पा लेना चाहती है। यही कारण है कि वह जीवन में कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकी। महेन्द्रनाथ सावित्री को इतना चाहता है कि वह उसके बिना रह नहों सकता। किंतु सावित्री अपने पति को पहचान नही सकी। शारीरिक सुख को वह सुख का एक मात्र साधन समझती है। इसलिए स्वयं तो व्यथित होती ही है, परिवार के सभी सदस्यों पर इसका कुप्रभाव पडता है।

जब जगमोहन की ओर से अस्वीकृत मिलने पर आँसू पोछंते हुए पुनः उसी घर में लौट आने को बाध्य होती है। आते ही वह अपनी खीझ एवं असफलता की अभिव्यक्ति बच्चों को पीट कर करती है। अपना आक्रोश बेटी किन्नी पर निकालती है। मध्यमवर्गीय परिवार की नारी होने के कारण उसे अपनी सीमाआ मे रहना चाहिए था। किंतु ऊँची आकांक्षाओं के कारण वह खुद तो कष्ट पाती ही है, साथ ही परिवार का प्रत्येक सदस्य जो उसके स्नेह के हकदार है, उन्हे भी दुखी करती है। एसे परिवार में पले बच्चे स्वभावतः विकृतियों के शिकार होगें ही। महेन्द्रनाथ व सावित्री का बड़ा लडका अशोक असंतुष्ट युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। अशोक बेरोजगार युवक है और उसमे विद्रोह की भावना भरी हुई है।

उसे अपने पिता से सहानुभूति है। उसे अपनी बहन बिन्नी का मनोज के साथ घर से भाग जाना पंसद नही है। परिवार के तनाव विद्रोह और उबाऊ सन्दर्भो के कारण अशोक के व्यक्तित्व में भी नकारात्मक तत्व आ गए है। वह अपनी मा के प्रति वितृष्णा का भाव रखता है। अभिनेत्रियों की तस्वीरों को काट–काट कर अपनी जिन्दगी जी रहा है। वह यौन विषयक पुस्तकों में अधिक रस लेता है। उसको ऐसा बनाने मे परिवारिक वातावरण का हाथ है।

बड़ी लड़की बिन्नी है वह आधुनिक युवती है। वह भी अपनी माँ की ही तरह जीवन से असंतुष्ट हैं।

बिन्नी भी अवसाद, उतावलेपन एवं असंतोष की प्रतिमूर्ति है। बिन्नी पर सावित्री के चरित्र का प्रभाव पड़ा है। वह अपनी माँ को नित नए व्यक्ति की ओर आकृष्ट होते देखती है अपनी माँ के प्रेमी मनोज के साथ घर छोड़कर चली जाती है और विवाह कर लेती है। उसे अपनी जिन्दगी अधूरी लगती है। जल्द ही वह अपने पति से ऊब जाती है। महेन्द्रनाथ बेटी की बर्बादी का कारण अपनी पत्नी को ही मानता हैं। बिन्नी कहती है कोई मनहूस चीज है जो वह इस घर से लेकर गयी है। वही चीज उसके दाम्पत्य–जीवन में दरार उत्पन्न कर देती है। वह आरंभ से जिस पारिवारिक यंत्रणा का शिकार हुई है उसी के कारण उसका अपना वैवाहिक जीवन भी सुखद नही हो पाया।

परिवार की सबसे छोटी लड़की है किन्नी। वह विद्रोही स्वभाव की है। वह माता, पिता, भाई, बहन किसी के प्रति लगाव महसूस नही करती। वह यौन–सम्बन्धों मे ऐसी दिलचस्पी लेने लगती है जो कि आयु से कही आगे है। उसमें भी चारित्रिक पतन के चिन्ह् दिखाई पड़ते हैं। तेरह वर्ष की उम्र में ही वह कैशीनोवा जैसी पुस्तक पढ़ती है। वह किसी से सीधे मह बात नहीं करती। उसके स्वभाव एवं चरित्र पर पारिवारिक पष्ठभूमि का असर पड़ा हैं। वह एक विघटनशील परिवार की बच्ची है। वह सदा ही अपने माता–पिता को लड़ते–झगड़ते पाती है जिस का असर बच्चों के चरित्र पर दृष्टिगोचर होता हैं। किन्नी को जिस स्नेह–दुलार की आवश्यकता थी वह उसे माता–पिता द्वारा नही मिला। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि व्यक्तित्व–विकास में परिवार ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। परिवार जैसा होगा, बच्चों का संस्कार भी वैसा ही होगा।

'आधे–अधूरे' में भारी–भरकम घटनाएं नही है। इसमें पात्रों की मनःस्थितियों और संवेदनाओं की टकराहट को आन्तरिक विस्फोट के रूप में तोव्रता से चित्रित किया गया है। चरित्रों में तीखा अन्तर्द्वन्द्व है। प्रत्येक चरित्र अतृप्त है, अभाव और कुण्ठाओं के आक्राश और विषाद से अभिशप्त है। अपने पारिवारिक नातों से आशंकित और क्रुद्ध है।'[4]

'आज के जीवन का अधूरापन और उस अधूरेपन में छटपटाता एक परिवार जो मनोवैज्ञानिक धरातल पर घर के अपनत्व को खोता जा रहा है। अजनबीपन, अलगाव, टूटन और असन्तोष का शिकार बनता जा रहा है। एक–दूसरे के प्रति संवेदना के अभाव में इतने अधिक आत्म–केन्द्रित हो गए है कि उनका दृष्टिकोण नकारात्मक होता जा रहा है। परिवार जैसी सुदृढ़ संस्था वासना भूख का शिकार बनकर तथा युगगत परिस्थितियों के कारण व्यक्ति का व्यक्तित्व बोदा, खोखला और नाटा होता जा रहा है।'[5]

'पहले अंक के अन्त में संगीत रूक जाने के बाद अंधेरे में कुछ क्षण तक कैंची की चक्–चक्–चक्–चक् सुनायी देते रहना ध्वनि का बड़ा सक्षम प्रतीकात्मक प्रयोग है जो पारिवारिक सम्बन्धों के टूटने–कटने और उनकी आपसी चक्–चक् का संकेत है।'[6]

'आधे–अधूरे अर्थ के दो आयाम प्रस्तुत करता है। घर परिवार के विघटन की समस्या इसके यथार्थवादी स्वर के उद्घाटित करती है और पात्रों का अधूरापन आधुनिक भाव–बोध को।'[7]

'यह नाटक आज के परिवार और समाज के विघटन की करूण कथा भी है और मानवीय सम्बन्धों एवं मूल्यों के टूटने की गाथा भी।'[8]

'राकेश के संपूर्ण साहित्य में यही चेतना अनुप्राणित है कि मूल्यों का विघटन हो रहा है, मनुष्य का अस्तित्व खतरे मे है, अस्मिता लुप्त हो चुकी है और मनुष्य जाति, उसकी सभ्यता और संस्कृति महाविनाश के दौर से गुजर रही हैं।

अतः समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपनी निजता की खोज में निरंतर निरर्थक प्रयास कर रहा है ।'[9]

निष्कर्ष

पारिवारिक जीवन मनुष्य के सद्भावों, सद्विचारों और सद्व्यवहारा की कसौटी होता है। पारिवारिक जीवन में प्रत्येक को दूसरे के हित के लिए त्याग करना पड़ता है। जब परिवार के सदस्य अपना ही स्वार्थ देखते हैं तब उनमें संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। यह संघर्ष पति–पत्नी, भाई–बहन, पिता–पुत्र आदि स्वजनों में भी चलता है, जो बदलते हए जीवन–मूल्यों के ही परिणाम है। आज मनुष्य कर्तव्यों को भूलकर परिवार में चले आ रहे परंपरागत मूल्यों को घृणा की दृष्टि से देखने लगा है और भौतिक सुख की और बढ़ने लगा है यही भौतिक सुख ही पारिवारिक विघटन को जन्म देता है। जिसकी अभिव्यक्ति मोहन राकेश ने 'आधे–अधूरे' नाटक में की है। नाटककार यह स्पष्ट करता है कि अधूरेपन को भरने के लिए विकृत–मूल्यों का सहारा लेना किसी भी दृष्टि से श्रेयस्कर नहीं है। इन्हीं विकृत मूल्यों के कारण उत्पन्न आसमंजस्य और कटुता सारे परिवार को बिखेर देती है। 'आधे–अधूरे' आज की अनिश्चित और एकरस घटनाहीन जिन्दगी का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है । इसके चरित्र आधुनिक युग के टूटते परिवार और विघटित होते हुए मानव–मूल्यों को प्रस्तुत करते है।

संदर्भ–सूची

1. सुन्दरलाल कथूरिया–नाटककार मोहन राकेश, कुमार प्रकाशन नई दिल्ली, जुलाई 1974, पृ0सं0 90 ।
2. मोहन राकेश–आधे–अधूरे, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, इस संस्करण में पहली बार 1993, पृ0 सं0 38–39 ।
3. वही पृ0 सं0 53 ।
4. जयदेव तनेजा–समसामयिक हिन्दी नाटकों में चरित्र–सृष्टि, सामयिक प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 1971, पृ0 सं0 125।
5. डॉ0 धनानन्द एम0 शर्मा–मोहन राकेश का नाट्य साहित्य, शान्ति प्रकाशन रोहतक, प्रथम संस्करण 1988, पृ0 सं0 64।
6. डॉ0 सुषमा बेदी–हिन्दी नाट्य प्रयोग के संदर्भ में, पृ0 सं0 232।
7. डॉ0 गोविन्द चातक–आधुनिक नाटक का मसीहाः मोहन राकेश, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 1975, पृ0 सं0 92।
8. जयदेव तनेजा–मोहन राकेश रंग–शिल्प और प्रदर्शन, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 1996, पृ0 सं0 222 ।
9. डॉ0 शारदा प्रसाद–मोहन राकेश के नाटक विषय और विधान, पंकज बुक्स दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृ0 सं0 86 ।